भारतीय वाङ्मय

हिन्दी तथा अहिन्दीभाषी क्षेत्रों के साहित्यिक-सांस्कृतिक समाचारों की मासिक पत्रिका

वर्ष 5 **अगस्त** 2004 **अंक** 8

नफरत के बीज बोती 'किताब'

आज पाकिस्तान के बुद्धिजीवी अनुभव करने लगे हैं कि पिछले पचपन वर्षों से स्कूली किताबों के ज़रिये बच्चों के जेहन में हिन्दुस्तान के प्रति जो नफ़रत के बीज बोए गये, वह नस्ल मुजाहिदीन बनी, नतीजा रहा हिन्दुस्तान के प्रति नफरत और दुश्मनी। इस फितरत में हिन्दुस्तान-पाकिस्तान में अनेक युद्ध हुए और आतंकवाद का प्रसार हुआ। आज हिन्दुस्तान ही नहीं पाकिस्तान भी इन आतंकवादियों से त्रस्त है। कितना धन दोनों मुल्कों ने युद्ध और सुरक्षा में खर्च किया, युद्ध के नये-नये अस्त्र-शस्त्रों का विकास किया, दुनिया के बाजारों से खरीदा और अपनी फौजों पर खर्च किया। यही रकम अगर देश के विकास पर खर्च किया गया होता तो पाकिस्तान खुद कश्मीर बन गया होता, और दोनों मुल्कों की दोस्ती एशिया की ताकत बनी होती।

नफरत की आग ने मुल्क के अवाम को गुमराह किया और सेना ताकतवर होती गई और मुल्क की सत्ता पर काबिज होती रही। जम्हूरियत (जनतंत्र) पर फौजी हुकूमत हावी होती गई।

हिन्दुस्तान से दोस्ती का पैगाम लेकर भारत के प्रधानमंत्री श्री अटलबिहारी वाजपेयी पाकिस्तान गये, फौजी हुकूमत ने उसका विरोध किया और कारगिल युद्ध हुआ। दुश्मनी को दरकिनार कर वाजपेयीजी फिर पाकिस्तान गये और मुल्क के अवाम (जनता) के साथ खुले दिल से दोस्ती का हाथ बढ़ाया, जनता ने उसे संजीदगी से महसूस किया और दोस्ती का नया दौर शुरू हुआ। लोगों ने महसूस किया कि उन्हें जो बताया जाता है कि एक दिन हिन्दुस्तान पाकिस्तान को मिटा देगा, यह गलत है। पाकिस्तान के लोग धीरे-धीरे समझने लगे हैं। उन किताबों में उन्हें समझाया गया कि पाकिस्तान की स्थापना मुहम्मद बिन कासिम के समय ही हो गई थी। मुस्लिम लीग के प्रयासों से अंग्रेज वहाँ से जा सके, लेकिन जमीन के बड़े हिस्से पर हिन्दुओं ने कब्जा कर लिया, मुसलमानों के साथ भारी अन्याय हुआ।

आज पाकिस्तान के लोग हिन्दुस्तान आ रहे हैं। स्कूली बच्चे, साहित्यकार, कलाकार, अपने बच्चों का इलाज कराने माता-पिता तथा अन्य और महसूस करते हैं कि नफरत कहाँ है? पाकिस्तान की किताबों में, मुल्क के नेताओं में जो पचासों वर्ष से हुकूमत पर काबिज रहने के लिए तरह-तरह के हथकंडे करते रहे हैं।

पाकिस्तान की मशहूर लेखिका किश्वर नाहिद कहती हैं—''किताबों के जरिए हमने जो नफरत के बीच बो दिये हैं। पहले उसे जड़ से खत्म करना जरूरी है, तभी कोई बात बन सकेगी। स्कूली पाठ्यक्रमों में बदलाव लाना जरूरी है ताकि नयी पीढ़ी एक-दूसरे को दोस्त के रूप में देखें न कि सरहद के इस पार और उस पार बन्दूक ताने खड़े दुश्मनों की सूरत में।''

दोनों देश के वाशिंदों हमें वर्तमान में जीना है, अतीत में नहीं, अपनी सोच को बदलें नफरत उगलती किताबों में प्रेम, मुहब्बत और सद्‌भाव के फूल खिलाएँ, दोनों मुल्क की सीमाएँ रहते हुए, दो दिल रहते हुए दोनों में एक ही धारा प्रवाहित होगी और इस प्रकार किताबें दुश्मन को दोस्त बनाने में सफल होंगी।

—पुरुषोत्तमदास मोदी

सच्चाई मिटाने के लिए किताबें जलती रहीं

रोमन लोगों ने यहूदियों, ईसाइयों और दार्शनिकों की किताबें जलाईं। यहूदियों ने ईसाइयों और गैर-मतावलम्बियों की किताबें जलाईं। ईसाइयों ने गैर-मतावलम्बियों और यहूदियों की किताबें जलाईं।

❑ ❑ ❑

चीन में ईसापूर्व तीसरी सदी के शासक शी-हुआंग-टी ने कन्फ्यूशियस विचारधारा के अनुगामी 460 विद्वानों को जिन्दा गाड़ दिया, ताकि इतिहास न लिखा जा सके। 212 में उसने अपने राज्य की तमाम पुस्तकों की एक प्रति शाही पुस्तकागार के लिए बचाकर शेष को जलवा दिया। उसकी इच्छा थी कि उसकी मृत्यु के बाद बची हुई पुस्तकें भी जला दी जाएँ ताकि विगत इतिहास का नामोनिशान मिट जाए। राजा से कुपित चीनी लोग वर्षों तक उसकी समाधि पर गन्दगी फेंकते रहे।

❑ ❑ ❑

अलक्जांड्रिया की विश्वविख्यात लाइब्रेरी का दहन बुद्धिजीवी दुनिया के महानतम हादसों में से एक है। 640 ई० में खलीफा उमर ने जब अलक्जांड्रिया पर फतह पाई, तो उसने इस लाइब्रेरी की दो लाख किताबों की होली जलवाई। उसने कहा, ''अगर ग्रीक लोगों का लेखन ईश्वरीय पुस्तक का समर्थन करता है, तो उनकी जरूरत नहीं, और अगर उसका विरोध करता है, तो भी उसे नष्ट किया ही जाना चाहिए।'' कहा जाता है कि इन किताबों को जलाकर छह महीने तक शहर में स्नानागारों में पानी गर्म करने का ईंधन बचाया गया।

❑ ❑ ❑

बीसवीं सदी में नात्सियों ने यहूदी लेखकों तथा यहूदी समर्थकों की पुस्तकों की अविस्मरणीय होलियाँ जलाईं। सबसे बड़ी ऐसी घटना 10 मई, 1933 को बर्लिन वि०वि० प्रांगण में घटी, जब पुस्तकों के जलाने को उचित ठहराते हुए गोएबल्स ने लम्बा भाषण दिया। जिन लेखकों की पुस्तकें जलाई गईं उनमें से कुछ थे—जॉन डॉस पेसॉस, अलबर्ट आइंस्टाइन, सिगमंड फ्रायड, मैक्सिम गोर्की, अर्नेस्ट हेमिंग्वे, हेलन केलर, लेनिन, रोजा लक्ज़मबर्ग, मार्क्स, टॉमसमान, प्रूस्ट, स्टीफान ज्विग, स्टालिन, ट्रॉटस्की और अपटन सिंक्लेयर।

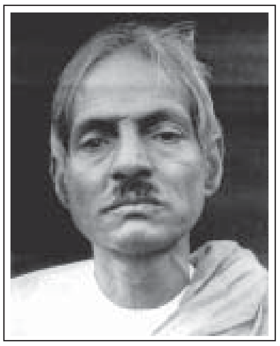

जन्म शताब्दी के अवसर पर

ज्ञानगंगा के प्रवाहक

डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल

कला मनीषी, पुरातत्त्वविद्, संस्कृति पुरुष का यह जन्म शताब्दी वर्ष है। 7 अगस्त 1904 को गाजियाबाद के खेड़ा ग्राम में जन्मे वासुदेवशरणजी ने मधुमेहजन्य विभिन्न रोगों से ग्रस्त 26-27 जुलाई 1966 की रात्रि को काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के सरसुन्दरलाल अस्पताल में नश्वर देह का त्याग किया।

भगीरथ के प्रयास से गंगा अवतरित हुई। वासुदेवशरणजी ने ज्ञानगंगा को प्रवाहित किया। उन्होंने 1925 ई० में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से इण्टरमीडिएट परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की, गर्वनमेण्ट कालेज, बनारस से संस्कृत परीक्षा भी उत्तीर्ण की। 1929 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी में बी०ए० की पं० मदनमोहन मालवीय द्वारा हस्ताक्षरित उपाधि-प्राप्त कर लखनऊ आ गये। इतिहास गुरु डॉ० राधाकुमुद मुखर्जी के सान्निध्य में 1929 में लखनऊ विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी में एम०ए, एल-एल०बी० की डिग्रियाँ प्राप्त की।

वकालत शुरू की, धन्धा झूठ का लगा, छोड़ दिया। 1931 में उपेक्षित पड़े मथुरा संग्रहालय का कार्य सँभाला। प्रस्तर की उपेक्षित पड़ी मूर्तियों में उन्होंने जीवन्त इतिहास देखा। उन्हें लगा कि उन्हें पिता के व्यवसाय में हाथ बँटाना चाहिए, त्यागपत्र देकर 1934 में लखनऊ लौट आये। सवा-साल तक पिता का कार्य-व्यापार देखा, परन्तु मन नहीं लगा। डॉ० राधाकुमुद मुखर्जी को इसकी जानकारी हुई तो उन्हें प्रयास कर 1935 में मथुरा-म्यूजियम के क्यूरेटर पद पर पुन: अधीष्ठित करा दिया। मथुरा पुरातत्त्व संग्रहालय की प्राक् कुषाण, कुषाण, गुप्त काल की मूल्यवान मूर्तियों तथा कला-शिलाओं को संयमित कर मथुरा कला की संज्ञा प्रदान की। पुरातत्त्व कला के क्षेत्र में यह पहला सुनियोजित प्रयास था।

पुरातत्त्व की यह यात्रा उन्हें 1939 में लखनऊ ले आई। मुर्दा अजायबघर के नाम से विख्यात 'प्रान्तीय पुरातत्त्व संग्रहालय' के क्यूरेटर पद पर आसीन हुए और उसे प्राक् कुषाण, कुषाण, गुप्त एवं मध्यकालीन पुरातत्त्व सामग्री से सुसज्जित कर जीवनदान प्रदान किया। आज यह प्रदेश का प्रमुख संग्रहालय है। 1941 में डॉ० अग्रवाल को लखनऊ विश्वविद्यालय से 'पाणिनि एज ऐ सोर्स ऑफ इण्डियन हिस्ट्री' शोध ग्रन्थ पर डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त हुई। यह शोध ग्रन्थ अँग्रेजी में 'इण्डिया एज नोन टु पाणिनि' और हिन्दी में 'पणिनिकालीन भारत' के नाम से प्रकाशित हुआ।

1946 में भारतीय पुरातत्त्व विभाग के डायरेक्टर जेनरल सुप्रसिद्ध पुरातत्त्वविद डॉ० मार्टिमर व्हीलर थे। उन्होंने पुरातत्त्व विभाग के भवन में मध्य एशिया से प्राप्त पुरातत्त्व सामग्री का संकलन कर 'सेन्ट्रल एशियन एंटीक्वीरीज म्यूजियम' के नाम से एक विशेष संग्रहालय का आयोजन किया। इसके सूत्र संचालन का दायित्व डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल को सौंपा। इस प्रकार डॉ० अग्रवाल की पुरातत्त्व यात्रा का तीसरा पड़ाव दिल्ली में हुआ। 1947 में देश स्वतंत्र हो चुका था। दिल्ली में राष्ट्रीय पुरातत्त्व-संग्रहालय स्थापित करने का निर्णय हुआ। डॉ० अग्रवाल को यह जिम्मेदारी सौंपी गई। इन्हीं दिनों दिल्ली में पहली बार राष्ट्रीय स्तर पर बृहत् कला-प्रदर्शनी का आयोजन हुआ। डॉ० अग्रवाल इस प्रदर्शनी के नियामक थे। इस प्रदर्शनी के परिचयार्थ दर्शनार्थियों के लिए पुस्तिका लिखी, उसमें मोहनजोदड़ो-हड़प्पा की सिन्धु सभ्यता से लेकर मध्य युग के अपराह्न तक की भारतीय कला उपलब्धि का संक्षेप में श्रेष्ठतम सर्वेक्षण किया जिसे सभी ने बहुत सराहा। दिल्ली में रहते हुए उन्होंने अनेक विशिष्ट ग्रन्थों की रचना की जिनमें प्रमुख है—'भारत सावित्री' (यह महाभारत की सारभूत मीमांसा का लोकप्रिय ग्रन्थ है) इस ग्रन्थ के लिए उन्हें आधुनिक व्यास कहा जाता है, 'मार्कण्डेय पुराण : एक सांस्कृतिक अध्ययन', 'मथुरा कला', 'पृथ्वीपुत्र' आदि। अपने छ: वर्षों के दिल्ली प्रवास में अग्रवालजी ने वहाँ की साहित्यिक-सांस्कृतिक गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग लिया।

दिल्ली में मार्टिमर व्हीलर तथा उनके उत्तराधिकारी डॉ० चक्रवर्ती (डायरेक्टर-जनरल, पुरातत्त्व विभाग) से कतिपय विषयों पर मतभेद और विवाद होने के कारण उन्होंने राजकीय सेवा से मुक्त होने का मन मनाया। इन्हीं दिनों वाराणसी के रायकृष्णदासजी से ज्ञात हुआ कि पं० मदनमोहन मालवीय की काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में 'इंडोलॉजिकल कालेज' खोलने की योजना है। इसके लिए तत्कालीन कुलपति गोविन्द मालवीय योग्य व्यक्ति की तलाश में हैं। उन्हें ज्ञात हुआ कि वासुदेवशरणजी दिल्ली की सरकारी सेवा से मुक्त होना चाहते हैं। गोविन्द मालवीयजी अग्रवालजी को पुरातत्त्व विभाग से प्रतिनियुक्ति पर अपने यहाँ ले आये। अपने जीवन के बीस वर्ष पुरातत्त्व विभाग की सेवा में व्यतीत कर 1951 में अग्रवालजी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय आये और कालेज ऑफ इंडोलाजी की स्थापना की। अग्रवालजी ने इस कालेज में भारतीय कला एवं स्थापत्य विषयों को प्रधानता दी, जिसके वे विशेषज्ञ थे।

वाराणसी में उनकी सारस्वत साधना आरम्भ हुई। यहाँ उन्होंने अनेक सांस्कृतिक-साहित्यिक ग्रन्थों की रचना की। 'भारतीय कला', 'हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन', 'मेघदूत : एक अध्ययन', 'कादम्बरी : एक सांस्कृतिक अध्ययन', 'जायसी पद्मावत संजीवनी व्याख्या', 'कीर्तिलता : संजीवनी व्याख्या', 'गीता नवनीत', 'उपनिषद नवनीत' तथा अंग्रेजी में 'शिव महादेव : द ग्रेट गॉड', 'स्टडीज इन इण्डियन आर्ट' आदि लगभग पचास ग्रन्थ हैं।

जनपदीय लोक-संस्कृति एवं लोकभाषाओं के उत्थान में भी उनका विशिष्ट योगदान है। उन्होंने ग्राम्य जीवन में व्यवहृत हजारों लोक-शब्दों, मुहावरों, लोकोक्तियों, अर्थ गम्भीर वाक्यपदों आदि को विलुप्त होने से बचाने के लिए जनपदीय परम्पराओं के संरक्षण, पुनरुद्धार एवं अभ्युत्थान का प्रयास किया।

डॉ० वासुदेवशरण के काशी आने से रायकृष्णदास के भारत कला भवन का विकास हुआ। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के वंशज प्रिन्स ऑफ वेल्स म्यूजियम के निदेशक डॉ० मोतीचन्द्र तथा डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल के संयुक्त प्रयास से इतिहास, कला तथा संस्कृति के अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हुए। डॉ० मोतीचन्द्र का 'काशी का इतिहास' डॉ० अग्रवाल की ही प्रेरणा है।

अन्तिम वर्षों में वे मधुमेह से घोर रूप से पीड़ित थे। नेत्र दृष्टि भी प्रभावित हो गई थी। उनकी पत्नी विद्या देवी उनकी निरन्तर सेवा करती थी। वे उनके लिए मट्ठे की व्यवस्था रखती थी। मुझ पर उनका बड़ा स्नेह था, मैं अक्सर ही उनके काशी हिन्दू विश्वविद्यालय स्थित निवास पर जाता था। देखता था, आँखें बन्द किये, काला चश्मा लगाये अपने छात्र को गूढ़ से गूढ़ विषय पर लिखवा रहे हैं। वे प्राचीन ऋषियों की सी मेधा-प्रतिभा से सम्पन्न अद्वितीय महामनस्वी थे। उनमें प्राच्य वेदविद्याविद रामकृष्ण भंडारकर तथा भारतीय कला मीमांसक डॉ० आनन्दकुमार स्वामी का मणिकांचन योग था। उनके यहाँ ज्योतिभूषण गुप्त तथा देश-विदेश के अनेक विद्वान् बराबर आते रहते थे। उन्हें पूर्ण सम्मान तथा आतिथ्य मिलता था। पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी

ज्ञान प्रवाह द्वारा

डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल के जन्मशताब्दी के *अवसर पर आयोजित*

सारस्वत श्राद्ध

1 अगस्त 2004

मुख्य अतिथि : डॉ० कपिला वात्स्यायन

विश्वविद्यालय परिसर में उनके पड़ोसी थे। उनके कथनानुसार ''वासुदेवशरणजी विलक्षण मेधावी थे। वर्षों पहले पढ़ी हुई बात उन्हें इस प्रकार स्मरण हो आती थी जैसे अभी पढ़कर उठे हों। उनके साथ घण्टों बैठा हूँ, बिल्कुल पता नहीं लगता था कि कब समय बीत गया। ज्ञान का ऐसा एकनिष्ठ साधक इस युग में दुर्लभ है।''

—पुरुषोत्तमदास मोदी

सम्मान-पुरस्कार

गुरु को काव्य कला निधि सम्मान

कवि **गिरिमोहन गुरु** को अखिल भारतीय नारी प्रगति मंच एवं शिव संकल्प साहित्य परिषद, होशंगाबाद ने काव्य कला निधि सम्मान से सम्मानित किया।

श्री राही, डॉ० रघुनन्दनप्रसाद सीठा, छाया शर्मा ने पं० गिरिमोहन गुरु एवं उनकी पत्नी को स्मृति चिह्न एवं शाल श्रीफल भेंट कर सम्मानित किया। इसके उपरान्त स्वराज ग्रोवर ने उन्हें 'काव्य कला निधि' की मानद उपाधि से अलंकृत किया।

डॉ० अर्जुन तिवारी को दिव्य रजत अलंकरण

अखिल भारतीय अम्बिकाप्रसाद दिव्य स्मृति पुरस्कार समिति ने **डॉ० अर्जुन तिवारी** को दिव्य रजत अलंकरण से सम्मानित करने का निर्णय लिया है। यह सम्मान उनकी कृति 'ई-जर्नलिज्म' पर दिया गया है। न्यायमूर्ति प्रेमशंकर गुप्त (इलाहाबाद), वेदप्रताप वैदिक, राममूर्ति त्रिपाठी द्वारा 'ई-जर्नलिज्म' को मौलिक रूप में उपस्थित एक श्रेष्ठ कृति घोषित किया गया है। ज्ञातव्य है कि डॉ० अर्जुन तिवारी ने कम्प्यूटर, इंटरनेट, साइबर को भारतीय मनीषा की उपलब्धि सिद्ध किया है। महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ के पत्रकारिता विभागाध्यक्ष पद से अवकाशप्राप्त डॉ० तिवारी तेईस ग्रन्थों के लेखक हैं।

आठवाँ अखिल भारतीय अम्बिकाप्रसाद दिव्य स्मृति प्रतिष्ठा पुरस्कार

उपन्यास और कहानी विधा का 5000/-रु० राशि का प्रथम दिव्य पुरस्कार दिल्ली की लेखिका श्रीमती मीराकांत को उनके उपन्यास 'तत: किम' के लिए, काव्य विधा का 2100/-रु० का द्वितीय दिव्य पुरस्कार गोंदिया के शायर श्री सलीम अख्तर को उनके गजल संग्रह 'काली नदी पीले लोग' के लिए तथा निबन्ध विधा का 2000/-रु० राशि का तृतीय दिव्य पुरस्कार गाजियाबाद के लेखक डॉ० विष्णुदत्त शर्मा को उनकी कृति 'भारतीय परम्पराओं की वैज्ञानिकता' के लिए प्रदान किये जायेंगे।

डॉ० केवलकृष्ण पाठक को डॉ० परमार पुरस्कार

रवीन्द्र ज्योति, जीन्द (हरियाणा) के सम्पादक डॉ० **केवलकृष्ण पाठक** को 28 जून 2004 को हिमाचल प्रदेश सिरमौर कला संगम ने रेणुकातीर्थ में 'डॉ० परमार पुरस्कार' से सम्मानित किया।

सम्मानस्वरूप स्मृति चिह्न, पदक, शाल, पुस्तकें, प्रशंसा-पत्र तथा 'कर्मवीर' की उपाधि प्रदान की।

आपका पत्र

'भारतीय वाङ्मय' का जुलाई 2004 ई० का अंक प्राप्त हुआ। कहना न होगा कि इसके प्रत्येक अंक का साहित्येतिहासिक महत्त्व होता है, जिसमें आपका सम्पादकीय नैवेद्य में तुलसीदल का काम करता है। आपने जिसे इतिहास का निर्मम सत्य कहा है, उसे हम काल का निर्मम-निष्पक्ष निर्णय कहना चाहेंगे। निश्चय ही, जो उसे स्वीकार नहीं करते, उससे सबक नहीं लेते, उन्हें काल की मार्जनी झाड़ बुहार कर किनारे कर देती हैं। तथ्यपरक प्रेरक समसामयिक सम्पादकीय टिप्पणी के लिए साधुवाद।

— साहित्यवाचस्पति **डॉ० श्रीरंजन सूरिदेव**,
पटना

'भारतीय वाङ्मय' एक बेहतर पत्रिका के रूप में निखर रही है। वैचारिक क्रान्ति लाने में आपकी पत्रिका के योगदान का ऐतिहासिक महत्त्व होगा। आपकी सम्पादकीय भी बड़ी महत्त्वपूर्ण होती है। ये विचार को प्रेरित करते हैं, मथते हैं, मन को गहरे छूते हैं। आपकी चिन्तन दृष्टि से मैं सहमत हूँ।

— अनिरुद्धप्रसाद विमल
पुनसिया, बांका (बिहार)

'भारतीय वाङ्मय' से आपके तथा अन्यों के प्रकाशनों और साहित्यिक गतिविधियों के सम्बन्ध में उपयोगी सूचनाएँ मिलती रहती हैं। इनमें मुझे एक कमी बराबर अनुभव हुई है और वह है चर्चित पुस्तकों के संस्करण और प्रकाशन-वर्ष का उल्लेख न होना। सामान्य पाठक के लिए संस्करण और प्रकाशन-वर्ष महत्त्वहीन हो सकता है, लेकिन शोधकर्ता, साहित्येतिहास-लेखक या इस प्रकार विशिष्ट पाठकों के लिये ये बड़े महत्त्व की चीजें हैं, जिन्हें अकादमिक दुनिया से विच्छिन्न लोग नहीं समझ पाते। दुर्भाग्य से हिन्दी में प्रकाशनों से सम्बन्धित प्रामाणिक सूचनाओं का कोई केन्द्रीय स्रोत नहीं है।

— डॉ० हरदयाल, डी०लिट्, दिल्ली-110 094

विभिन्न प्रकार की इतनी सारी जरूरी साहित्यिक सूचनाएँ 'भारतीय वाङ्मय' से प्राप्त होती हैं। सच्चे अर्थों में 'गागर में सागर' भरने का प्रयास है। इस दुनिया में जब से भी पुस्तकों ने अपना आकार ग्रहण किया होगा तब से लेकर आज तक न जाने कितनी वैज्ञानिक उपलब्धियाँ देखने-सुनने को मिली, लेकिन पुस्तकों की महत्ता में कोई कमी नहीं आई। टेलीविजन, रेडियो, वी०सी०आर० और न जाने क्या-क्या भले ही कुछ देर के लिए हमें आकर्षित कर ले पर उनसे हम तृप्त नहीं होते, क्षणिक सुख भले ही मिले, तृप्ति तो पुस्तकों से ही सम्भव है। वास्तविक रूप में पुस्तकें मार्गदर्शन करती हैं और सात्विक मनोरंजन भी। पुस्तकें हमारी प्रेरक भी हैं, मित्र भी, सहयोगी भी। **— शशिबिन्दुनारायण मिश्र**
रानापार, गोरखपुर-273 405

'भारतीय वाङ्मय' का प्रत्येक सम्पादकीय 'सौ सुनार की एक लुहार की' तर्ज पर सटीक होता है। हिन्दी भाषा पर हाल में लगातार सम्पादकीय टिप्पणियाँ पढ़ने को मिली हैं। इस सन्दर्भ में उल्लेख करना चाहूँगा कि पूर्वोत्तर राज्यों में ईसाई समुदाय द्वारा 'डीलक्स बस' के रूप में चार-पाँच चलित पुस्तकालय चला रखे हैं। ये इन राज्यों के सभी विद्यालयों में पहुँच जाते हैं। केन्द्रीय विद्यालय, वायुसेना, जोरहाट में चार वर्ष पदस्थ रहते हुए उन्हें अत्यन्त सफल पाया। सभी पुस्तकें अंग्रेजी में होने से बच्चे मजबूरी में उन्हें खरीद रहे थे। अगर वही वैन हिन्दी पुस्तकालय होती पेपरबैक/पाकेट बुक्स से सजी होती तो जबरदस्त बिक्री करती। क्या हिन्दी वाले ऐसे जनांदोलनकारी प्रयास हेतु आगे आयेंगे ?

— कुन्दन राठौर, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
केन्द्रीय विद्यालय, क्र० 01, बिन्नागुी, छावनी
(प० बंगाल)

'भारतीय वाङ्मय' में भारत में हिन्दी की (दुर-) दशा की कसक का मुझे भी अनुभव होता है। आज की पीढ़ी अपनी मातृभाषा में बोलने, लिखने या गिनने में शर्म का अनुभव करती है—यह परिस्थिति मेरे लिए राजा भोज के नागरिक उस लकड़हारे जैसी हो जाती है जिसने कहा था—''न तथा बाधते राजन् यथा 'बाधति' बाधते''। और हिन्दी के शब्दकोश ? जितने पुराने उतने ही अप्रामाणिक, अछूत। हिन्दी में कहाँ है कोई 'ऑक्सफार्ड' या पाणिनी ?

'यह परिस्थिति बदलेगी ?'—सन्देहास्पद है—बल्कि बिगड़ेगी। **— महावीरप्रसाद अग्रवाल**
बावल-223 501 (हरियाणा)

पाठक हिन्दी संसार ही नहीं साहित्य जगत से क्या अपेक्षा रखते हैं, यह उनके पत्रों से परिलक्षित होता है। पाठक जागरूक तो हैं, किन्तु लगता है वर्तमान परिवेश में विवश है। राजनीतिक वातावरण में किसी को साहित्य की, पाठकों की सुधि कहाँ ?

पाठकों के पत्र हमारा मार्गदर्शन करते ही हैं, कई महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ भी देते हैं। पाठकों के पत्रों का स्वागत है। **— सम्पादक**

बौद्ध तथा जैन धर्म

डॉ० महेन्द्र सिंह

द्वितीय आवृत्ति : 2004

ISBN : 81-7124-382-7

विश्वविद्यालय प्रकाशन
वाराणसी

मूल्य : 180.00

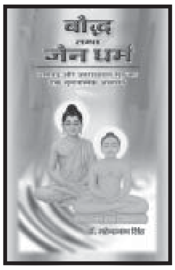

आसन एवं योग मुद्राएँ

डॉ० रविन्द्रप्रताप सिंह

प्रथम संस्करण : 2004

ISBN : 81-7124-365-7

विश्वविद्यालय प्रकाशन
वाराणसी

मूल्य : 250.00

यत्र-तत्र-सर्वत्र

संपादक: नंदकिशोर नवल

आलोचना-त्रैमासिक **कसौटी** के समापन अंक का लोकार्पण

'कसौटी' का अवसान : सन्नाटे का छंद

साहित्य अकादमी के रवीन्द्र भवन स्थित सभागार में 10 जुलाई, 2004 की शाम नंदकिशोर नवल द्वारा सम्पादित आलोचना त्रैमासिक 'कसौटी' के 15वें और समापन अंक का लोकार्पण हुआ। इस अवसर पर 'मूल्यांकन और पुनर्मूल्यांकन : कसौटी का प्रश्न' पर परिचर्चा हुई। कुँवरनारायण, अशोक वाजपेयी, निर्मला जैन, के० सच्चिदानन्दन, केदारनाथ सिंह, पुरुषोत्तम अग्रवाल, राजेन्द्र यादव, मैनेजर पाण्डेय, नित्यानंद तिवारी, मुरलीमनोहरप्रसाद सिंह आदि की उपस्थिति महत्त्वपूर्ण थी।

'कसौटी' के सम्पादक नंदकिशोर नवल ने कहा—"आज का जो विषय है—मूल्यांकन और पुनर्मूल्यांकन : कसौटी का प्रश्न, उसमें जो कसौटी शब्द है वह पत्रिका से सम्बन्धित नहीं है। हमने तय किया था एक पत्रिका निकालेंगे, जो आलोचना की पत्रिका होगी। पत्रिका के केवल पन्द्रह अंक निकालने की बात शुरू में ही तय कर ली गई थी, जिसकी सराहना प्रो० के० सच्चिदानन्द ने की थी।"

वरिष्ठ कवि कुँवर नारायण ने पत्रिका के समापन अंक का लोकार्पण किया—"मैं समझता हूँ कि यदि मूल्यांकन शब्द नहीं होता, केवल पुनर्मूल्यांकन ही होता तो बहुत मौंजू होता क्योंकि मूल्यांकन में हम समीक्षा करते हैं जबकि पुनर्मूल्यांकन में उस कृति को हम फिर से देखते हैं। मुझे हिन्दी समीक्षा में एक कमी लगी कि उसने कृति का परीक्षण तो किया लेकिन आत्म परीक्षण नहीं।"

प्रतिष्ठित कवि आलोचक अशोक वाजपेयी ने कहा—"जिन पत्रिकाओं के बारे में हम सोचते हैं कि बन्द हो जाना चाहिए, वे अविराम निकलती हैं लेकिन विडम्बना की बात यह है कि जिन पत्रिकाओं को हम चाहते हैं वे बन्द हो जाती हैं। आलोचना का काम रचना के जीवनदायी केन्द्र तक पहुँचता है और यह केन्द्र लगातार विस्थापित होता केन्द्र है। कसौटी कुछ तो साहित्य की अपेक्षाओं से बनती है और कुछ निजी रुचि से। क्या रचना से भी कसौटी निकलती है? साहित्य की क्या कोई स्थायी कसौटी है?"

एनबीटी के नये चेयरमैन

प्रख्यात इतिहासकार प्रोफेसर बिपिनचंद्रा नेशनल बुक ट्रस्ट (एनबीटी) चेयरमैन नियुक्त किए गए। चंद्रा बी०के० शर्मा का स्थान लेंगे। चंद्रा 1993 तक जवाहरलाल नेहरू विवि मानद प्रोफेसर थे।

श्रीकान्त जोशी स्मृति समारोह, इन्दौर

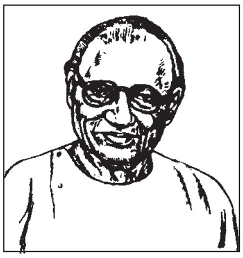

गीत-संगीत-कविता और संस्मरण के साथ हिन्दी के मूर्धन्य कवि श्रीयुत् श्रीकान्त जोशी का स्मरण एक सक्रिय सार्थक और सृजनात्मक आयोजन के साथ किया गया, और एक कवि एवं एक सकर्मक स्वप्नदृष्टा मनुष्य के छोड़े गये कामों के सूत्र आगे बढ़ाए गए।

कविता पाठ करते मंगलेश डबराल

29 जून, 2004 की शाम अभिनव कला समाज सभागृह में भवभूति अलंकरण तथा उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान के निराला पुरस्कार से सम्मानित खण्डवा में रहे हिन्दी के प्रख्यात कवि श्रीयुत श्रीकान्त जोशी के जन्मदिन के अवसर पर आयोजित तीसरे स्मरण समारोह में समकालीन हिन्दी कविता के महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर श्री मंगलेश डबराल (दिल्ली) का कवितापाठ, हिन्दी के सुपरिचित युवा कथाकार श्री भालचन्द्र जोशी (खरगोन) का स्मरण-आलेख वाचन और युवा संगीतकार-गायक श्री राजेन्द्र नागले द्वारा श्रीकान्तजी के गीतों की संगीतबद्ध प्रस्तुति की गई।

कार्यक्रम के आरम्भ में श्रीकान्तजी के छोटे भाई श्री भारतभूषण जोशी ने मंगलेश डबराल जी का, बेटे श्री आशुतोष जोशी ने श्री भालचंद्र जोशी का तथा बेटी श्रीमती आराधना श्रोती ने संगीतकार श्री राजेन्द्र नागलेजी का स्वागत किया।

हिन्दी अकादमी, दिल्ली
जयशंकरप्रसाद के नाटक 'चन्द्रगुप्त' का नाट्य मंचन

जयशंकर प्रसाद के प्रसिद्ध नाटक 'चन्द्रगुप्त' का मंचन नई दिल्ली में किया गया। इस नाटक में इतिहास के माध्यम से देश की एकता, अखण्डता और राष्ट्र के प्रति निष्ठा को प्रदर्शित किया गया है। इस युग की राजनीति के सूत्रधार चाणक्य ने संगठित राष्ट्र का संकल्प लेकर बिखरे हुए साम्राज्य की शक्तियों को संगठित किया और चन्द्रगुप्त मौर्य को मगध का सम्राट बना समस्त आर्यावर्त के उत्थान हेतु कूटनीति, दूरदृष्टि और दृढ़ता का परिचय दिया। इस नाटक में चन्द्रगुप्त की तेजस्विता एवं कठोरता उभरकर सामने आती है।

नाटक ऐतिहासिक होने के साथ-साथ समसामयिक है। राजधर्म, राष्ट्रधर्म, मानवधर्म सभी का संयोजन इस नाटक में मिलता है।

इस नाटक में चाणक्य की भूमिका में एच०एस० हर्ष, चन्द्रगुप्त की भूमिका में नवरत्न गौतम, सिंहरण की भूमिका में दिलीप, कल्याणी की भूमिका में बबिता मिश्रा, महाराज नंद एवं ऋषि दाण्डयायन की भूमिका में भूषण कुलश्रेष्ठ, सुवासिनी की भूमिका में भारती, अमात्य राक्षस की भूमिका में रजत, अलक्षेन्द्र एवं शकटार की भूमिका में जितिन, पर्वतेश्वर की भूमिका में विनीत, अलका की भूमिका में ममता बिष्ट, जननी की भूमिका में सरोज पटनी, सैल्यूकस की भूमिका में यशपाल, कार्नेलिया की भूमिका में निधि और प्रतिहारी की भूमिका में सागर, राजदीप मान थे।

हरियाणा साहित्य अकादमी द्वारा
जल चेतना यात्रा

हरियाणा को पंजाब पानी नहीं दे रहा है जिससे हरियाणा की कृषि संस्कृति प्रभावित होने के कगार पर है। अकादमी ने पानी के महत्त्व पर जागृति उत्पन्न कर पानी को राष्ट्रीय सम्पत्ति घोषित करने की माँग की है। हरियाणा साहित्य अकादमी के निदेशक श्री चन्दर त्रिखा के कथनानुसार विभिन्न राज्यों द्वारा प्रदेशों की जनता के बीच पानी को लेकर विवाद उपस्थित करने के प्रति जागरूक करना है। पानी को प्रदेश की सीमाओं में नहीं बाँधा जा सकता—जल ही जीवन है। बिन पानी सब सून।

गीत नवांतर खण्ड-3 का प्रकाशन

सार्थक साहित्य परिषद, मुम्बई के तत्वावधान में मधुकर गौड द्वारा सम्पादित 'गीत नवांतर' का प्रकाशन हुआ है। गीत को अनेकानेक नामों—यथा गीत, प्रगीत, अगीत, जनवादी गीत, जनगीत, नवगीत आदि से अलंकृत किया जाता रहा है। 'गीत नवांतर' के तीन खण्डों में हिन्दी गीत जगत के 22 चर्चित गीत-हस्ताक्षरों को शामिल किया गया है जिनमें प्रमुख हैं—देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र', माहेश्वर तिवारी, महेश अनदा, यश मालवीय, कुँवर बेचैन, राजेन्द्र गौतम, कुमार रवीन्द्र आदि।

नींद टूटने तक

युवा कवयित्री अनिता अग्रवाल ने अपने कविता संग्रह 'नींद टूटने तक' से 12 जून 2004 को प्रगतिशील लेखक संघ गोरखपुर द्वारा आयोजित गोष्ठी में एकल काव्य पाठ सुनाया। अध्यक्ष डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव ने कहा—अनिता की कविताओं में यत्न-साधित कुछ भी नहीं है, सहजता और गहरा संवेदनशील सर्वेक्षण है। गोष्ठी में गोरखपुर के अनेक साहित्यकार सम्मिलित हुए जिनमें प्रमुख थे—चितरंजन मिश्र, बादशाह हुसेन रिजवी, मदनमोहन, संतोषकुमार सिंह, फिल्मकार प्रदीप, कपिलदेव त्रिपाठी।

भगवाकरण बनाम प्रदेशीकरण

मानव संसाधन विकास मंत्री माननीय अर्जुन सिंह पुस्तकों के भगवाकरण से जूझ रहे हैं। पाठ्य पुस्तकों को भाजपाई प्रभाव से मुक्त कर रहे हैं। किन्तु प्रदेशों की पाठ्य-पुस्तकों में क्या हो रहा है, इस ओर भी इनकी दृष्टि है क्या ?

बिहार में स्कूली पुस्तकों का लालूकरण हो रहा है। पुस्तकों में लालूप्रसाद यादव के व्यक्तित्व और कृतित्व की उज्ज्वलंता (?) को उजागर किया जा रहा है—''लालू का पूरा व्यक्तित्व एक खुली किताब है। वे जो सोचते हैं, वही करते हैं। लालूजी का स्तुतिगान करने वाले इन पुस्तकों के रचयिता हैं।'' 'लालू की पाकिस्तान यात्रा' पर पुस्तक निकल गई है। प्रतीक्षा कीजिए जल्दी ही कोई सज्जन लालू की रेलयात्रा पर पुस्तक लिख डालेंगे।

हरियाणा में ताऊ देवीलाल पाठ्य-पुस्तकों में प्रवेश करने जा रहे हैं। अन्य प्रदेश भी इस दिशा में अनुकरण करेंगे, क्या यह देश के विघटन का संकेतक नहीं है ? —**समय सार**

प्रेमचंद और टॉलस्टॉय

बस्ती के ताराशंकर 'नाशाद' मुंशीजी से मिलने लखनऊ पहुँचे। उन दिनों वह अमीनुद्दौला पार्क के सामने एक मकान में रहते थे। मकान के नीचे ही 'नाशाद' साहब को एक आदमी मिला, धोती-बनियान पहने। 'नाशाद' ने उससे पूछा—मुंशी प्रेमचंद कहाँ रहते हैं, आप बतला सकते हैं ? उस आदमी ने कहा—चलिए, मैं आपको उनसे मिला दूँ।

वह आदमी आगे-आगे चला, 'नाशाद' पीछे-पीछे। ऊपर पहुँचकर उस आदमी ने 'नाशाद' को बैठने के लिए कहा और अन्दर चला गया। जरा देर बाद कुर्ता पहनकर निकला और बोला—अब आप प्रेमचंद से बात कर रहे हैं....

●●●

विख्यात चिंतक-लेखक टॉलस्टॉय रूस के यासनापालियाना नामक गाँव में रहते थे। उन्होंने अपनी तमाम सम्पत्ति अभावग्रस्त लोगों को समर्पित कर दी थी और एक साधारण-से मकान में सात्विक जीवन जीते थे। एक बार यूरोप के कुछ बुद्धिजीवी टॉलस्टॉय से मिलने उनके गाँव पहुँचे। मकान के दरवाजे पर खड़ी लड़की ने कहा, 'आइए, बाबा अन्दर कमरे में हैं।' उन्होंने देखा कि एक वृद्ध व्यक्ति कमरे में बैठा जूते की सिलाई कर रहा है। आगन्तुकों में से एक ने पूछा, 'टॉलस्टॉय महोदय कहाँ हैं ?' उत्तर मिला, 'कुछ क्षण प्रतीक्षा कीजिए, वह अभी आते हैं।'

वृद्ध ने जूता सी लेने के बाद हाथ धोए तथा सामने आकर उनका अभिवादन कर बोले, 'मैं क्षमा चाहता हूँ, जूता सिलने में पाँच मिनट लग गए। मुझे ही टॉलस्टॉय कहते हैं।' एक व्यक्ति ने आश्चर्य से कहा, 'आप इतने बड़े विचारक होकर जूता स्वयं क्यों सिल रहे थे ?' उन्होंने उत्तर दिया, 'प्रत्येक व्यक्ति को अपना काम स्वयं करने का अभ्यास रखना चाहिए।'

कथन

हिन्दी की बेईमान विधा आलोचना

आलोचना का ही एक पक्ष है समीक्षा। लेकिन समीक्षाएँ भी आज बदनीयती से लिखी जा रही हैं। समीक्षाएँ आपसी सम्बन्धों के आधार पर लिखी जा रही हैं। किसी को चढ़ाया तो किसी को उतारा जा रहा है। इसीलिए ऐसा नहीं लगता है कि कोई सुधी पाठक समीक्षाओं को देखकर पुस्तक खरीदता हो। आज हिन्दी के सामने नई तरह की चुनौतियाँ सामने आ रही हैं। उदारीकरण की नयी चुनौतियाँ विश्व बाजार में दृढ़ता के साथ पैर जमाने का प्रयास कर रही हैं। ऐसे में आवश्यकता है कि हिन्दी इण्टरनेट की चुनौती को स्वीकार करे। संचार के दूसरे माध्यम आदि के लिए एक खास तरह की भाषा बनानी पड़ेगी, जिसमें पंडिताऊ जड़ता न हो बल्कि व्यावहारिक भाषा हो जिसे प्रत्येक जन समझ सके। लोग समय की कमी के कारण पढ़ते भी कम हैं। इसलिए जरूरी है कि उपन्यास छोटे हों। इसके बावजूद बड़े उपन्यास भी आए और चर्चित भी हुए। जिन्हें लोग पढ़ भी रहे हैं। पहले हिन्दी साहित्य के केन्द्र में कहानियाँ और कविताएँ होती थीं लेकिन अब ट्रेंड उपन्यास केन्द्रीय विधा के रूप में आ रहा है।

उपन्यास को स्वतंत्र और सम्मानित विधा के रूप में देखा जा रहा है। पहले जिन लेखकों के दस-पन्द्रह कहानी संग्रह छप जाते थे, वे ही बाद में एक उपन्यास भी लिख दिया करते थे किन्तु अब ऐसा नहीं रहा। आज बहुत से लोग केवल उपन्यास ही लिख रहे हैं। कभी केन्द्र में रही कविता की स्थिति आज दयनीय हो गयी है। कविताएँ पढ़े जाने से ज्यादा गुनगुनाने की चीज हैं। लेकिन दुर्भाग्य की बात है कि पिछले कई वर्षों से हिन्दी कविता इस चीज से वंचित हो गयी है। आज के कवि सम्मेलनों को केवल घटिया कवियों के लिए ही छोड़ दिया गया है।

दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति यह है कि हिन्दी में बाल लेखन पर कभी भी ध्यान नहीं दिया गया। यह बात जरूर है कि बच्चों के लिए लिखना बहुत मुश्किल काम है लेकिन इतने बड़े साहित्य जगत में किसी न किसी को तो आगे आना ही पड़ेगा।

'तबादला' उपन्यास के लेखक
विभूतिनारायण राय, वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक

पुरस्कारों में बाल साहित्य की उपेक्षा

पुरस्कार साहित्यकार का सम्मान होते हैं मूल्यांकन नहीं। फिर भी सामाजिक दृष्टि से एक मूल्यांकन प्रक्रिया काम करती रहती है और साहित्यकार का श्रेणी विभाजन होता रहता है। इसी आधार पर अनेक बार पुरस्कारों को अस्वीकार भी किया जाता रहा है। पर बाल साहित्य का कोई पुरस्कार कभी अस्वीकार नहीं किया गया क्योंकि मुख्य पुरस्कार तो केवल दो ही हैं, एक बाल साहित्य भारती और एक नामित पुरस्कार। बाल साहित्य भारती की कल्पना भारत भारती पुरस्कार के संदर्भ में की गई है अर्थात् यह बाल साहित्य का भारत का भारत भारती पुरस्कार प्राय: साठोत्तर बाल साहित्यकार को देने की परम्परा है। यह दोनों प्रकार के साहित्यकारों का समग्र मूल्यांकन है पर यह कैसी विडम्बना है कि एक पुरस्कार ढाई लाख का है और दूसरा मात्र पच्चीस हजार का। अर्थात् बाल साहित्य का महत्त्व दशमांश है। इतना ही नहीं, दो-दो लाख के 'महात्मा गाँधी सम्मान' आदि चार और पुरस्कार हैं फिर पचास हजार वाले पुरस्कार हैं। बच्चों को टाफी, चाकलेट बड़े लोग देते हैं। बाल साहित्य के साथ संस्थान का रवैया ऐसा ही रहा है। संस्थान की कार्य समिति में कोई बाल साहित्यकार नहीं है जो बाल साहित्य के साथ हो रहे इस अन्याय की बात उठा सके। साठ-पैंसठ साल के कृतित्व का यह मूल्यांकन बाल साहित्य की उपेक्षा है। अधिक नहीं तो बाल साहित्य का सर्वोच्च सम्मान एक लाख का तो होना ही चाहिए। नामित पचास हजार का और पच्चीस-पच्चीस हजार के तीन प्रोत्साहन पुरस्कार। —**डॉ० श्रीप्रसाद,** वाराणसी

टी०वी० ने पैदा किया भाषाहीनता का संकट

टेलीविजन ने परिवार में भाषाहीनता का संकट पैदा कर दिया है। भाषाहीनता के कारण ही आपसी संबंधों में उथल-पुथल मची है और जीवन नीरस और सपाट हो गया है।

संचार माध्यमों का काम सिर्फ सूचना देना नहीं है। समाज को दिशा निर्देशन के लिए आकांक्षा व्यक्त करना भी एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। समाचारपत्र का कार्य समाज को शिक्षा और संस्कार देना भी है। देश को अंग्रेजों की गुलामी से मुक्त कराने की आकांक्षा पत्रकारों ने ही पैदा की थी। भारत के नवनिर्माण में पत्रकारिता की अप्रतिम भूमिका रही है। लोगों की रुचि के अनुसार चलना घटिया भूमिका है। ऐसे में एक पत्रकार और एक माल विक्रेता में कोई अन्तर नहीं रह जाता। विश्व पटल पर दृष्टिपात करें तो हम पाते हैं कि भारतीय समाचार पत्र प्रोडक्शन क्वालिटी में भले ही विदेशी समाचार पत्रों से बहुत पिछड़े हुए हों किन्तु भारतीय समाचार पत्रों की गुणवत्ता अब भी बहुत ऊँची है। आज जीने की शर्त है कि दूसरों को समझा जाए। एक-दूसरे को समझ कर जीने से जीवन बहुत सहज हो जाएगा।

समाज में ऐसी स्थिति बनाने के लिए साहित्य और पत्रकारिता को अन्योन्याश्रित होना पड़ेगा। आत्मीयता मनुष्य का स्वभाव है और पत्रकार इस स्वभाव को और अधिक जागृत करने का कार्य करता है।

—**डॉ० विद्यानिवास मिश्र**

स्त्रीत्व : धारणाएँ एवं यथार्थ
प्रो. कुसमलता केडिया
प्रो. रामेश्वरप्रसाद मिश्र

प्रथम संस्करण : 2004
ISBN : 81-7124-372-X

विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
मूल्य : 180.00

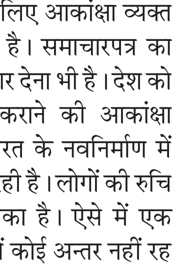

पुस्तक समीक्षा

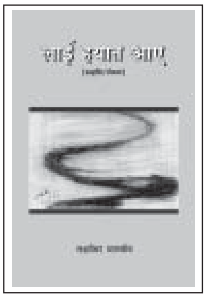

लाई हयात आए
लक्ष्मीधर मालवीय

प्रथम संस्करण : 2004
ISBN : 81-7124-369-X
विश्वविद्यालय प्रकाशन
वाराणसी
मूल्य : 280.00

अनुपस्थिति की उपस्थिति

ज्ञानप्रकाश विवेक

संस्मरण शायद वही लिख सकता है जिसके पास अतीत को जिन्दा करने (या रखने) की ताकत हो। जिसके पास शिद्दत की स्मृतियाँ हों और उन स्मृतियों में अधबुझी राख की आँच भी।... संस्मरण शायद वही लिख सकता है जिसके पास—पीछा करता वक्त हो, जो बार-बार पलटकर देखने के लिए मजबूर करता हो।... लक्ष्मीधर मालवीय पलटकर देखते हैं। सिर्फ देखते नहीं। ऐसा प्रतीत होता है जैसे उन्होंने यादों के बयाबाँ में छलांग-सी लगा दी है। आश्चर्यजनक यह कि वे अकेले छलांग नहीं लगाते। कोई कालखण्ड उनके साथ होता है।

'लाई हयात आए'—पुस्तक में लक्ष्मीधर मालवीय के संस्मरण हैं। वे जापान में रहते हैं। लेकिन उनके अन्दर एक हिन्दुस्तान जिन्दा है जिसमें यादों का एक नक्शा है और उस नक्शे में कुछ पुराने दौर की काशी, पुराने दौर का इलाहाबाद और कुछ पुराने दौर के दोस्त—साफ-साफ दिखाई देते हैं।

'लाई हयात आए' किताब को पढ़ते हुए महसूस होता है जैसे उन्होंने इस भौतिक संसार के बरक्स स्मृतियों का संसार बसा रखा है—जागता-सा, मन में हलचल पैदा करता-सा, दु:ख-सुख की सरगर्मियों के साथ किसी अदृश्य भाषा में, कुछ तहरीर करता हुआ—स्मृतियों का संसार!

यादों से शून्य लोग सम्भवत: गणित से भरपूर होते हैं। इसके विपरीत, स्मृतियों से खेलते हुए लोग गहरी संवेदना से जुड़े रहते हैं। जैसे कि लक्ष्मीधर। उनके दोस्त बेशक इस संसार से कूच कर गए हों लेकिन वो मरकर, लक्ष्मीधर के अन्दर बस जाते हैं। इन संस्मरणों में इतनी तीव्र अनुभूति है जैसे कि वे अपने मृत दोस्तों से बातें कर रहे हों।

लाइ हयात आए—शीर्षक मानीखेज हैं। कई सारे संकेत। कई सारे अर्थ। किताब का शीर्षक—'मिसरे' की शुरूआत है। लेकिन किताब के भीतर 'मिसरे' का बाकी हिस्सा—'कज़ा ले चली चले' का अहसास बार-बार कराता है।

इन संस्मरणों से गुजरते हुए यह भी महसूस होता है कि लेखक कुछ ढूँढ़-सा रहा है, यह जानते हुए भी कि प्रोफेसर दोई, अध्यापक तानिमूरा, बाबूजी (पं० मदनमोहन मालवीय), फिराक गोरखपुरी, निराला और घनिष्ठ मित्र प्रभात इस संसार में नहीं हैं। लेखक अपने समय के बनारस को ढूँढ़ता है और इलाहाबाद को। घाट, गलियाँ, चौराहे, दुकानें, लोग, परिवेश एक ऐसा कालखण्ड, जो व्यतीत हो चुकने के बावजूद, लेखक के पास मौजूद है।

लक्ष्मीधर मालवीय के पास कशिशभरी जुबान है—सादा लेकिन आवेश और संवेग से भरी—जज्बाती जुबान। शायद, यादें, इसी तरह की जुबान में सहजता से प्रवेश करती हों, जैसे कि 'लाई हयात आए' पुस्तक में। चिड़िया की आखिरी उड़ान किताब में दूसरा स्मृति-लेख है। जैसे दुख की लम्बी नज्म हो। लक्ष्मीधर पंक्ति-दर-पंक्ति, एक (जापानी) व्यक्ति के भीतर की अवस्था को रचते हैं। अनकहे को कहने का प्रयास। मन के भीतर, पैदा होते उजाड़ से तआरूफ कराते हुए लक्ष्मीधर अध्यापक तानिमूरा को याद करते हैं। आखिर वो क्या चीज है जो जापानी अध्यापक तानिमूरा के अन्दर खालीपन और खलिश भरती है। अच्छी खासी नौकरी छोड़कर घर के सारे सामान को बाँटकर तानिमूरा हाकूबा पर्वत की ओर निकल जाते हैं (शायद आत्महत्या करने) और कभी लौटकर नहीं आते।

यहाँ लक्ष्मीधरजी के व्यंग्य में छुपा दर्द गौरतलब है—"हाकूबा दर्शनीय स्थल है, आत्महत्या करने के लिए भी अनुपयुक्त नहीं।" जापानियों की आत्महत्या की प्रवृत्ति पर यह दुखभरी टिप्पणी है। तानिमूरा के बहाने, लेखक, कहीं न कहीं, मन की उस अवस्था को भी व्यक्त करते दिखाई देते हैं जब जीवन की निस्संगता, मनुष्य का शिकार करने लगती है।

जब वे कहते हैं—युद्ध हर एक के मन में बचा रह जाता है, टूटी हुई फाँस की तरह। तो लगता है उनके शब्दों में दुख का धीमा-सा विस्फोट भी है। मसलन उनका पहला संस्मरण प्रोफेसर दोई को लेकर लिखा गया है। संस्मरण के बिलकुल आखिर में किसी आत्मीय के न होने (या संसार से चले जाने) की व्यथा को लक्ष्मीधर कहीं ज्यादा गाढ़ा होने देते हैं—"जापान पहुँचकर प्रोफेसर दोई से मेरा नमस्कार कहना।" उन्होंने (डॉ० धीरेन्द्र वर्मा) कहा था। लेकिन दोईजी के कमरे में बड़ी खिड़की से अन्दर आती हुई फीकी धूप के, और मेरे सिवा, दूसरा कोई न था।

कहीं-कहीं, लक्ष्मीधर की स्मृतियों में फँतासी जैसा अबूझपन महसूस होता है। कहीं एकदम इसके विपरीत यथार्थ से मुठभेड़ करे स्वयं लक्ष्मीधर। हस्तलिखित पांडुलिपियों को खोजते-भटकते कोई जनूनी। कविवर देव की हस्तलिखित पांडुलिपियों को ढूँढ़ना जितना अनिवार्य है उससे अधिक एक शोधकर्मी की बेचैनी। यहाँ पूरा संस्मरण वृत्तांत जैसा है लेकिन किस्सों जैसी कोई चीज बीच-बीच में अनोखा गद्य रचती है। संस्मरण का शीर्षक—इच्यों की पीली पत्तियाँ। इन पीली पत्तियों को बतौर रूपक गढ़ते हुए वे कहाँ से कहाँ पहुँचते हैं। लक्ष्मीधर का घर परिवार, शोध, गाँव-शहर, बनारस के अतिरिक्त इस संस्मरण में बीसियों पचासों सगे-सम्बन्धियों का आत्मीय उल्लेख है। बहुत कुछ निजी। लेकिन सरस। अपना-सा लगता। यह लेख शोध के पीछे की विकटता और चुनौतियों की गाथा भी है। इसी प्रकार लाई हयात आए संस्मरण में जयपुर है। कालेज में नौकरी। मन न लगना और फिर जापान प्रवास की शुरूआती यादें—प्रेम। संघर्ष। विश्वास। निर्धनता। यहाँ लक्ष्मीधरजी का अकिको (जापानी युवती) से प्रेम सम्बन्ध का अतिसंक्षिप्त लेकिन सौम्य और शालीन उल्लेख है। बाबूजी के प्रति (पं० मदनमोहन मालवीय) आदरभाव है। लेकिन अपने पिता के विषय में वे ज्यादा नहीं खुलते। बनारस को उन्होंने बार-बार बहुत स्थानों पर याद किया है तो भारत के लोगों की निष्क्रियता, काहिली, पाखण्ड पर (आखिरी लेख में) करारी चोट भी की है।

निराला और फिराक पर लेख हैं। इन पर बहुत कुछ लिखा गया है। लेकिन लक्ष्मीधर अपने ढंग से लिखते हैं—वेदना पैदा करते हुए।

लेकिन दुख का आठवाँ कमरा खोला है लक्ष्मीधर ने अपने मित्र प्रभात को याद करते हुए—पारे की काँपती हुई बूँद—यानी प्रभात! पूरे संस्मरण में स्मृतियों की थरथराहट है। जैसे वक्त के नुकीले फर्श पर, स्मृतियाँ, अपने जख्मी पाँव रख रही हों। पूरा लेख बेचैन करता है और अन्त। जैसे प्रभात न समाप्त हुआ हो—किसी सपने की मौत हुई हो। प्रभात को सही दिशा मिलती तो सम्भवत: एक प्रतिभा को उभरता हुआ सब देखते। लेकिन भटके हुए, स्वप्नजीवी प्रभात का विक्षिप्त होना, जीवन की अवसादग्रस्त यात्रा का अगला पड़ाव प्रतीत होता है। लक्ष्मीधर ने अपने संस्मरण में प्रभात को खूब याद किया है और यह अहसास भी कराया है कि निष्क्रिय युवक की प्रतिभा का क्षरण किस प्रकार होता है और समाज कितना क्रूर!

लक्ष्मीधर मालवीय ने प्रभात के तमाम पत्र अपने संस्मरण में दिए हैं। बकौल लेखक—प्रभात ब्लैक होल में परिवर्तित हो रहा था। दोषी कौन था—जीवन की विडम्बनाएँ या फिर अपने द्वारा पैदा किया गया सैलाब! अवसाद से घिरा प्रभात, लक्ष्मीधर से एक खत में पूछता है—सुख क्या है? इस सुख की कल्पना के पस:मंजर प्रभात की खलिश, निराशा और अवसाद को महसूस किया जा सकता है।

सरल और गैर-जमानासाज लोगों की दुनिया, सम्भवत: इसी तरह की होती होगी—लक्ष्मीधर मालवीय की पुस्तक के लोगों जैसी। एक मौलिक-सी उदासी को जीते लोग। जैसे जी न रहे हों। जीवनरूपी खिलौने को, रोजाना, जरा-जरा, खुद-ब-खुद तोड़ रहे हों।

ये संस्मरण अपनी तरह के हैं। बहुत संवेदनशील गद्य की रचना। सपाटबयानी से मुक्त। गहरी आत्मीयता। स्मृतियों के खेल। जीवन राग। और जीवन के किसी कोने में छुपकर बैठी मृत्यु। लेखक, उस मृत्यु से भेंटवार्ता करा रहा हो जैसे।

मुल्क से दूर बैठा एक संवेदनशील लेखक, अपनी मिट्टी की गन्ध को भूल नहीं पाया। इन संस्मरणों में वही गन्ध है—पुराने वक्तों की। इन संस्मरणों में वे एक ऐसे पाठ को रचते हैं जिसमें कई सारे अंतर्पाठ हैं।

पूरी पुस्तक, अनुपस्थित की उपस्थिति हो जैसे।

पुस्तक को पढ़ते हुए मन व्याकुल होता है। लक्ष्मीधर मालवीय के गद्य की यह सफलता है। वे स्वयं बेचैन होते हैं और पाठक को बेचैन करते भी हैं। यहाँ, दुख की न समाप्त होने वाली लय है जिसमें जीवनराग है और उसकी अनेक छवियाँ।

—'नया ज्ञानोदय' जुलाई 2004 से

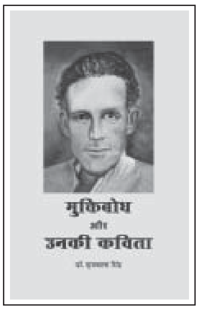

मुक्तिबोध और उनकी कविता

डॉ० बृजबाला सिंह

संस्करण : 2004

ISBN : 81-7124-374-6

विश्वविद्यालय प्रकाशन
वाराणसी

मूल्य : 180.00

मुक्तिबोध को समझने में सहायक

डॉ० विश्वनाथप्रसाद

नयी कविता की शुरुआत किससे हुई, यह विवाद का विषय हो सकता है लेकिन यह निर्विवाद है कि मुक्तिबोध नयी कविता के श्रेष्ठ कवियों में से एक हैं। मुक्तिबोध की सामाजिक चेतना, उनका राजनीतिक दृष्टिकोण, मुक्तिबोध के काव्य में उभरने वाले बिम्ब, उनकी फन्तासी, मुक्तिबोध की भाषा और उनकी कविताओं का विशेष शिल्प है। यह उनकी श्रेष्ठता का निर्धारण करती है। उन्होंने कविता, कहानी, उपन्यास, डायरी, समीक्षा, निबन्ध आदि विधाओं में लेखन किया है। भारत के इतिहास और संस्कृति, मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र, समीक्षा की समस्या, भारत के सामाजिक विकास, भारत के प्राचीन इतिहास, भारत में इस्लाम के आगमन और उसके प्रभाव, भारतीय संस्कृति के आरम्भ काल से आज तक की चेतना आदि पर मुक्तिबोध ने बहुत गहराई से विचार किया है। नयी कविता के किसी कवि ने इतने विस्तार और इतनी गहराई में जाने का प्रयास नहीं किया। मुक्तिबोध की मार्क्सवाद से प्रतिबद्धता और उनकी विशिष्ट अभिव्यक्ति उन्हें दूसरों से अलग कर देती है। वे अनुभव करते थे कि पूँजीवादी स्याह रेल के नीचे मानव मरा पड़ा है और कालिदास सड़कों पर कंघी बेच रहा है (मध्य वित्त)। इसीलिये आदर्शवादी और सिद्धान्तवादी मन से वे पूछते हैं कि अब तक तुमने क्या किया? वे अभिव्यक्ति के खतरे उठाने के लिये तैयार थे। अपनी परम अभिव्यक्ति को खोजने के लिये वे हर गली, हर सड़क, हर गतिविधि, हर चरित्र को झाँक-झाँक कर देखते थे। वे एक नये समाज की रचना करना चाहते थे। उनके मन में समाज और राजनीति को बदलने का एक गहरा विचार था। उनकी दृष्टि अछूते सन्दर्भों की गहराई से विवेचन कर रही थी। हिन्दी के अधिकांश मार्क्सवादी समीक्षकों ने भी इतनी गहराई से विचार नहीं किया है। मुक्तिबोध को बिना समझे आधुनिक कविता को (विशेषकर छायावादोत्तर काव्य को) समझना कठिन है।

मुक्तिबोध पर बराबर समीक्षायें लिखी जा रही हैं। उनकी शक्ति को देखकर उनके मरने के बाद कुछ समीक्षकों ने उनको सर्वश्रेष्ठ घोषित किया। लेकिन यह फतवा देना है। मुक्तिबोध को गहराई से समझने के लिए नये से नये समीक्षक और अध्येता सामने आ रहे हैं। इन्हीं में से एक हैं बृजबाला सिंह। आधुनिक साहित्य के विवेचन में मुक्तिबोध की अनवरत विद्यमानता का विवेचन करने वाली उनकी पुस्तक 'मुक्तिबोध और उनकी कविता' को विश्वविद्यालय प्रकाशन ने प्रकाशित किया है। मुक्तिबोध के विचारों, उनकी संवेदना, उनकी फन्तासी, उनके रचना कौशल और मुक्तिबोध की भाषा पर बृजबाला सिंह ने आधिकारिक ढंग से विचार किया है। मानव मुक्ति की बात करने वाले मुक्तिबोध में पाये जाने वाले अन्तर्विरोधों को भी इस पुस्तक में रेखांकित किया गया है। मुक्तिबोध को बृजबाला सिंह ने भावुक माना है। वे कहती हैं कि "मुक्तिबोध की भावुकता कातरता से सर्वथा मुक्त है।" लेकिन मैं मुक्तिबोध को ठोस यथार्थ की जमीन पर खड़ा देखता हूँ। बृजबाला ने भी मुक्तिबोध पर पड़े मार्क्स के प्रभाव का विवेचन किया है। मुक्तिबोध के इस सूत्र वाक्य को उन्होंने रेखांकित किया है—"हमारा सामाजिक मस्तिष्क ही हमारी आत्मा है।" वर्ग संघर्ष सम्बन्धी मुक्तिबोध के विचारों से सन्दर्भ में बृजबाला सिंह का यह कथन बहुत सार्थक है कि मार्क्सवादी समीक्षकों में पिष्ट पेषण और व्यक्ति विरोध है। मुक्तिबोध स्वस्थ और दुराग्रह मुक्त रचनाकार थे। मुक्तिबोध के मार्क्सवादी सौन्दर्य शास्त्र का विवेचन करते हुए बृजबाला सिंह ने उनकी मौलिकता की भी चर्चा की है। यह मौलिकता है— "व्यक्ति-स्वातंत्र्य की सापेक्षता।" इसे मुक्तिबोध ने अपनी परम अभिव्यक्ति कहा है।

इस पुस्तक में मुक्तिबोध की कविता 'अँधेरे में', 'ब्रह्म राक्षस' आदि का भी अच्छा विवेचन है। मुक्तिबोध की आरम्भिक रचनाओं में प्रेम, सौन्दर्य और प्रकृति है, किन्तु बाद की कविताओं में भय, संत्रास, अवसाद, कुंठा, बिलगाव, मानवतावाद और क्रान्ति की चेतना है। बृजबाला सिंह ने मार्क्सवादी विचारों का अलग से अध्ययन किया है। इसलिए 'अनुभव और अनुभूति' वाले अध्याय में उसका विस्तार नहीं किया है। मुक्तिबोध के कला विधान और भाषा पर भी इस कविता में विचार है। मुक्तिबोध के प्रतीकों, बिम्बों, फन्तासी तथा शब्दों के प्रयोगों पर भी ठीक ढंग से विचार किया गया है। डॉ० ब्रजबाला सिंह मुक्तिबोध की तुलना निराला और अज्ञेय से करती हैं। इसमें भी बहस हो सकती है। लेकिन इसमें कोई बहस नहीं कि डॉ० बृजबाला सिंह की यह पुस्तक मुक्तिबोध को अच्छी तरह से समझने में सहायक है। हिन्दी में इनी गिनी महिला समीक्षक हैं। डॉ० ब्रजबाला सिंह में एक अच्छे समीक्षक के गुण हैं। अच्छी समझदारी, अच्छा विवेचन और अच्छी भाषा के साथ वे आग्रह मुक्त होकर लेखन करती हैं। यह पुस्तक कई अन्य पुस्तकों की आशा बँधाती है।

वटवृक्ष की छाया में

कुमुद नागर

प्रथम संस्करण : 2004

ISBN : 81-7124-346-0

विश्वविद्यालय प्रकाशन
वाराणसी

मूल्य : 190.00

नागर परिवार की गाथा

पारखी

एक समर्पित रचनाकार के जीवन में संघर्ष रहना स्वाभाविक है। संवेदनशील कलाकार तथा रचनाकार कुमुद नागर की कृति वट वृक्ष की छाया में नागर परिवार की चार पीढ़ियों का विवरण है। स्वनाम धन्य नागरजी की रचनात्मक ऊर्जा, पारिवारिक समस्याओं के साथ संघर्षण में निकलती रही है जिसका प्रभाव भी दिखाई पड़ा। नागरजी स्वयं भी प्रभावित थे तथा परिवार भी संघर्ष के दौर में ही रहा। इस कृति में इन्हीं बिन्दुओं पर प्रकाश डाला। लेखक ने यह दर्शाया है कि परिवार ने इसे किस प्रकार ग्रहण किया और उनके परिप्रेक्ष्य में नागरजी की क्या छवि उभरती है। इन बातों का चित्रण बहुत ही रोचक ढंग से किया गया है। कहीं-कहीं पढ़ते-पढ़ते मन अभिभूत हो जाता है। मन में एक भूचाल-सा आता है कि समाज को दिशा देने वाले रचनाकारों को क्या नहीं झेलना पड़ता है। एक प्रतिभावान रचनाकार और कलाकार तनाव और संघर्ष में रहता है। इसको कृति में अच्छे ढंग से व्यक्त किया गया है। कृति वटवृक्ष की छाया में नागरजी के पारिवारिक तथा साहित्यिक जीवन के अनेक दुर्लभ चित्र भी संकलित हैं। यह कृति हिन्दी के सुधीजनों के लिए तो अनमोल है ही साथ ही विद्यार्थियों तथा शोधार्थियों के लिए भी उपयोगी है।

—जागरण से

श्री कुमुदनागर को
श्री विष्णु प्रभाकर द्वारा लिखे पत्र से

नागरजी को मैं बहुत दिनों से जानता था। बहुत कुछ जानता था लेकिन आपकी यह पुस्तक पढ़कर मैं जो कुछ जान सका वह सचमुच नागरजी को जानने लायक था। बड़े व्यवस्थित ढंग से आपने उनके जीवन की कहानी कही है एवं उन महत्त्वपूर्ण पड़ावों को उकेरा है जिन्होंने नागरजी को 'नागरजी' बनाया। छोटी-छोटी घटनाओं के कितने महत्त्वपूर्ण प्रभाव हो सकते हैं, यह वैसे मैंने अपने जीवन में भी अनुभव किया है लेकिन नागरजी के जीवन में आये ऐसे दृश्यों ने मुझे एक दृष्टि दी।

मैंने अभी अपने जीवन के संस्मरण लिखे हैं पहला भाग प्रकाशित हो गया है और शरदजी उसे पढ़ भी चुके हैं। दूसरा भाग आने ही वाला है और तीसरा एक डेढ़ महीने में आ जायेगा। चौथा अभी नहीं लिख पाया लेकिन आपने तो एक ही भाग में वह सब इतनी सशक्त भाषा में कह दिया कि दूसरे

भाग की जरूरत ही नहीं। इतने टर्निंग पॉइन्ट हैं इस छोटी-सी किताब में कि आश्चर्य होता है कि तुम कैसे सहज भाव से यह सब लिख गये। रेडियो और टीवी के सम्बन्ध में पढ़ते हुए ऐसा लगा जैसे मैं अपने बारे में पढ़ रहा हूँ और तुम्हारी पत्नी की कहानी—वैसा मेरे साथ तो नहीं हुआ लेकिन हुआ जरूर। पर मेरी पत्नी ने सब सँभाल लिया। लेकिन कैंसर ने उन्हें मुक्ति नहीं दी। लेकिन तब तक हम जिन्दगी के दूसरे छोर को छूने लगे थे। फिर भी यह सब पढ़ते हुए तुम्हारी और तुम्हारे परिवार की मन:स्थिति, अपने मन अपने परिवार की मन:स्थिति के परिप्रेक्ष्य में देखता रहा। कितना अपनापन महसूस होता है यह सब जानकर।

नागरजी के जीवन में रेडियो का क्या स्थान था, यह मैंने देखा है। वह दृश्य भी मैं नहीं भूला जब मेरे सामने ही श्री जगदीश माथुर की किसी बात से अप्रसन्न होकर रेडियो छोड़ने का निश्चय किया था। वह एक तरह से आगे आने वाली घटनाओं का पूर्व रूप था। एक के बाद एक लगभग सभी प्रोड्यूसर रेडियो छोड़कर चले गये।

आपने अपनी रचनाओं पर होने वाली प्रतिक्रियाओं की जो चर्चा की है वह सब पढ़ते हुए मुझे अपनी रचनाओं पर प्राप्त होने वाली प्रतिक्रियाएँ याद आ गईं। आपकी इस पुस्तक में मैंने न जाने कितनी बार अपने आप को देखा। क्या यह आपकी कम सफलता है। अन्तिम यात्रा से कुछ दिन पूर्व ही वह मेरे आमंत्रण पर साहित्य अकादमी के एक समारोह में आये थे। मुझे लगा था कि शायद यह हमारी अन्तिम भेंट है क्योंकि वह भाषण देते हुए कहीं से कहीं पहुँच जाते थे। लेकिन जब मैं शरतचन्द्र के जीवन की सामग्री की तलाश में भटक रहा था तब उन्होंने मेरी कितनी सहायता की थी। अपनी इस पुस्तक में आपने अपने पिताजी की जीवनी ही नहीं लिखी है बल्कि उनके युग का अंतरंग परिचय भी दिया है। व्यक्ति की जीवनी का कोई अर्थ नहीं होता जब तक वह अपने युग से एकाकार नहीं हो जाती। 'वटवृक्ष की छाया में' असल में व्यक्ति की नहीं, इस पूरे युग की कहानी है। संक्षेप में आपने बहुत कुछ कहा है। तो भाई, आपकी पुस्तक पढ़ते हुए मैं उस युग को ही देखता रहा और उसमें अपने को ही ढूँढ़ता रहा। तो भाई मैं आपको बधाई देता हूँ। बहुत-बहुत बधाई।

आपका

विष्णु प्रभाकर

धन धन मातु गङ्ग

डॉ० भानुशंकर मेहता

प्रथम संस्करण : 2004

ISBN : 81-7124-376-2

विश्वविद्यालय प्रकाशन

वाराणसी

मूल्य : 300.00

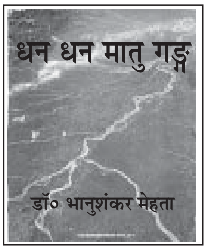

काशी की संस्कृति की आत्मास्वरूप विद्वान् और चिन्तक डॉ० भानुशंकर मेहता की पुस्तक 'धन धन मातु गङ्ग' मात्र लेखों का संग्रह नहीं अपितु इसमें डॉ० मेहता के व्यक्तित्व के अनुरूप ही पुण्यतोया भागीरथी गङ्गा के विविध आयामों का दिग्दर्शन है। इसमें धर्म, अध्यात्म, पुण्य और संस्कृति की गङ्गा तो प्रवाहित है ही अपितु गङ्गा के प्रदूषण की पीड़ा, उसके निवारण के प्रयास और निर्मलीकरण के बहाने आपाधापी पर सटीक व्यंग्य और कटाक्ष भी है। पुस्तक के अनुशीलन से हजारों वर्ष पुराने काशी की संस्कृति और विशेष रूप से सुरम्य घाटों पर उत्पन्न, पल्लवित और पोषित सांस्कृतिक धारा में डुबकी लगाने का सौभाग्य मिलता है। डॉ० मेहता के अतिरिक्त कुछ अन्य विद्वानों के लेखों ने भी मणिकाञ्चन का योग प्रदान किया है इनमें भूगोल, विज्ञान व इतिहास का भी समावेश है। रक्षत गङ्गाम् महाकाव्य की प्रणेता डॉ० कमला पाण्डेय की प्रस्तावना से ग्रन्थ की उपयोगिता में और अधिक समृद्धि हुई है। अनेक देशी और विदेशी विद्वानों और गङ्गाभक्तों के संस्मरण पाठकों के लिए प्रेरणास्त्रोत हैं। यह पुस्तक संस्कृति के विशिष्ट पुरोधा स्व० आचार्य वासुदेवशरण अग्रवाल को समर्पित है जिनका यह शताब्दी वर्ष है।

डॉ० भानुशंकर मेहता के अतिरिक्त विश्वविद्यालय प्रकाशन और विशेष रूप से उसके स्वामी श्री पुरुषोत्तमदास मोदी जो स्वयं सुधी चिन्तक हैं, इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ सुलभ कराने के लिए हमारे साधुवाद और बधाई के पात्र हैं। **—रमेशचन्द्र शर्मा**

पूर्व महानिदेशक/कुलपति, नेशनल म्यूजियम

निदेशक/प्रोफेसर, भारत कला भवन

भारतीय वाङ्मय

मासिक

वर्ष : 5 **अगस्त 2004** **अंक : 8**

प्रधान सम्पादक

पुरुषोत्तमदास मोदी

सम्पादक

परागकुमार मोदी

वार्षिक शुल्क

रु० 40.00

अनुरागकुमार मोदी

द्वारा

विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

के लिए प्रकाशित

वाराणसी एलेक्ट्रॉनिक कलर प्रिण्टर्स प्रा० लि०

वाराणसी

द्वारा मुद्रित

E-mail : sales@vvpbooks.com

Website : **www.vvpbooks.com**

डाक रजिस्टर्ड नं० ए डी-174/2003

प्रेस रजिस्ट्रेशन एक्ट 1807 ई० धारा 5 के अन्तर्गत

Licenced to post without prepayment at

G.P.O. Varanasi

Licence No. LWP-VSI-01/2001

RNI No. UPHIN/2000/10104

सेवा में,

प्रेषक : (If undelivered please return to :)

विश्वविद्यालय प्रकाशन

प्रमुख प्रकाशक एवं पुस्तक विक्रेता

(विविध विषयों की हिन्दी, संस्कृत तथा अंग्रेजी पुस्तकों का विशाल संग्रह)

विशालाक्षी भवन, पो०बाक्स 1149

चौक, वाराणसी-221 001 (उ०प्र०) (भारत)

VISHWAVIDYALAYA PRAKASHAN

Premier Publisher & Bookseller

(BOOKS IN HINDI, SANSKRIT & ENGLISH FOR STUDENTS, SCHOLARS, ACADEMICIANS & LIBRARIAN)

Vishalakshi Building, P.O. Box : 1149

Chowk, VARANASI-221 001(U.P.) (INDIA)

☎ : Offi. : (0542) 2421472, 2413741, 2413082, (Resi.) 2436349, 2436498, 2311423 ● Fax : (0542) 2413082